ISSN (P) : 0976-7444
(e) : 2395-7247

वैदिक युग में संगीत–शिक्षा का महत्व

10

डा0 पूर्ण चौहान*

वैदिक साहित्य में संगीत की तीनों विद्याओं– गीत, वाद्य एवं नृत्य–का पर्याप्त मात्रा में उल्लेख तथा साम से संबंधित एक विशिष्ट प्रकार के प्रचुर साहित्य का सृजन इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि वैदिक काल में संगीत–कला तथा संगीत–शास्त्र विकास के सर्वोच्च धरातल पर प्रतिष्ठित थे। वैदिक काल में संगीत का स्वरूप क्या था तथा एतद्विशयक किन सिद्वांतों की प्रतिष्ठा हुई थी, इसका विवेचन करना हमें यहाँ अभीष्ट नहीं संगीत से संबंधित इतने विशाल साहित्य का सृजन एक दिन में अथवा अपने–आप हो गया हो, ऐसा नहीं माना जा सकता। इसके पीछे संगीत–शिक्षा की निश्चित रूप से एक सुदीर्घ परंपरा रही होगी और संगीत–शिक्षण की कई संस्थाएँ कार्य कर रही होंगी। इस शोधपत्र तथा उसकी पंरपरा का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

वैदिक काल में संगीत के दोनों रूप–लौकिक तथा शास्त्रीय–प्रचलित थे। लौकिक संगीत का स्वरूप बहुत–कुछ सामाजिक तथा पारिवारिक कार्यक्रमों में ही दिखाई पड़ता था। लेकिन उस संगीत की पंरपरा जन–सामान्य से संबद्ध होने के कारण लोक–कार्यक्रमों में ही चलती रही, अतएव उसका संकलन तत्कालीन साहित्य में लगभग नहीं–सा हुआ और यदि कहीं उल्लेख हुआ भी तो वह इतना अल्प है कि उसके आधार पर हम उसके प्रशिक्षण–संबंधी कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। दूसरी तरफ शास्त्रीय संगीत की पंरम्परा प्रबुद्व ऋषिजनों के मस्तिष्क से संबद्ध होने के कारण तद्युगीन यज्ञादि धार्मिक कार्यक्रमों में अधिक विकास को प्राप्त हुई और उसको साहित्यक स्वरूप भी प्राप्त हुआ। इस शास्त्रीय संगीत का जो कुछ रूप विपुल वैदिक साहित्य में दिखाई पड़ता है, उसके आधार पर उनकी शिक्षण–पद्धति का हम अनुमान लगा सकते है, जिसके द्वारा वह विकसित एवं प्रसारित हुआ।

वैदिक शास्त्रीय संगीत, जिसको हम 'साम' की संज्ञा देते है, अपने प्रारभिक काल में जो विकसित हुआ, वह बहुत–कुछ वैयक्तिक था और वैदिक ऋषियों के अपने अंत–करण में निहित गायन–प्रतिभा का प्रतिफलन था। जिन ऋषियों ने ऋड.–मंत्रों का दर्शन किया, उन्हीं में से यदि सभी ने नहीं तो कुछ ने अपनी दृष्ट ऋचाओं पर गान भी किया। इस बात की पुष्टि सामयोनि ऋचा के दृष्टा ऋषि तथा उस ऋचा के ऊपर उसी ऋषि के द्वारा किए गए गान से होती है। यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं कि ऋषियों ने ऋड, मंत्रों का दर्शन किया था, उन्हीं ऋषियों ने उन मंत्रों पर गान भी किया हो। यह भी कोई आवश्यक नहीं कि जिन ऋषियों ने ऋड.मंत्रों का दर्शन किया, उनमें से सबने उन मंत्रों पर गान ही किया हो। ऐसा कहना अनुचित

*एसो0 प्रौफै0, रा0 महा0 वि0 मण्डी, हि0प्र0।

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

न होगा कि जिन ऋषियों के अंदर गान की स्वाभाविक प्रतिभा रही होगी, उन्होंने अपनी ही ऋचाओं पर गान भी किया होगा। 'साम–वेद' की वर्तमान कौथुम शाखा की गान–संहिता में ग्रामेगेयगान में पचपन सामों के ऋषि ऐसे मिलते है।, जो कि सामयोनिऋचा के भी द्रष्टा है। आरण्यगान में बाहर गानों के ऋषि वे ही है, जो उन गानों की योनिभूत ऋचा के भी द्रष्टा हैं। ऊहगान में इक्कीस सामों के ऋषि वे ही हैं, जो उनकी सामयोनि ऋचाओं के भी ऋषि है। ऊह्यगान में तीन सामों के वे ही ऋषि हैं, जो उनकी भूत ऋचा के भी ऋशि है। 'सामवेद' की गान–सहिता में इस प्रकार के जिन मंत्रद्रष्टा ऋषियों के 'साम' संकलित हैं, उनमें वशिष्ठ, विष्वमित्र, षुनःषेय, वामदेव, कण्व, भरद्वाज, उषना आदि प्रमुख हैं।

शास्त्रीय संगीत के इस उद्भव–काल में जिन ऋषियों ने अपनी द्रष्ट ऋचाओं के ऊपर स्वंय गान किया, उसके लिए उनको किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं थी। उनके अन्दर संगीत की जन्मजात प्रतिभा थी। यास्क ने अपने 'निरूक्त' नामक ग्रंथ में इन ऋषियों को 'साक्षात्कृतधर्मा कहा है, जिन्होने साम–मंत्रों का दर्शन स्वयं अपनी साधना से किया था, किसी से सीखकर नहीं। इस प्रकार इस उद्भाव–काल में संगीत अपने सृजनात्मक रूप में था, प्रशिक्षणजन्य नहीं।

उसी काल में साम का एक स्वरूप ऐसा भी दिखाई पड़ता है, जहाँ ऋषि स्वयं तो ऋङ्:–मंत्रद्रष्टा नही, किंतु संगीत की मुल शक्ति अंतःप्रतिभा से संपन्न होने के कारण वह किसी अंन्य ऋषि के द्वारा दृष्ट ऋचा के ऊपर गान करता है; जैसे–'अतश्चिदिंद्र न उपा' ('सामदेव', 215) नामक ऋचा नामक ऋचा के द्रष्टा ऋषि श्रुतवेद है तथा इस सामयोनि ऋचा पर 'कोत्स नामक साम का गान करने वाले ऋषि कुत्स हैं। वर्तमान गान–संहिता में ग्रामे–गेयन में 275 ऋचाएँ ऐसी हैं, जिनके द्रष्टा ऋषि अन्य है तथा साम के द्रष्टा ऋषि अन्य । आरण्यगान में 61 ऋचाओं के द्रष्टा ऋषि उस पर सामगान करने वाले ऋषि से भिन्न है। ऊगान में 102 ऋचाओं के द्रष्टा ऋषि तथा गान के ऋशि भिन्न–भिन्न हैं। ऊह्यगान में ऐसी ऋचाओं की संख्या 87 हैं, जिके ऋक्द्रष्टा तथा साम के ऋषि अलग–अलग हैं । यह बात उल्लेखनीय है कि यहाँ भी अन्य ऋषि के दृष्ट मंत्र को आधार बनाकर उस पर सामगान करने वाले ऋषि को किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं थी। शास्त्रीय संगीत की प्रतिभा उसके अन्दर थी, उसके विकास के लिए उसने तत्कालीन उपलब्ध ऋचाओं को मात्र आधार बनाया था, उसके साम की मौलिकता में किसी को संदेह नहीं था। साम–परंपरा में यह साम उसी सामग ऋषि के नाम पर प्रचलित रहा। उस सामग ऋषि को भी 'साक्षात्कृतधर्मा' ऋषियों की ही कोटि में रखा गया। इस शास्त्रीय संगीत के निर्माण–काल में विकास का एक महत्वपूर्ण रूप हमें वहाँ दिखाई पड़ता हैं, जहाँ पर एक ऋषि एक एक ही ऋचा पर अनेक प्रकार से गान करता है। यह उसकी संगीत–प्रतिभा तथा संगीत–साधना का ज्वलंत प्रमाण है। इस काल में गान ने साम के रूप में एक निश्चित स्वरूप ग्रहण किया और इन सामों ने आदिगायक ऋषियों के नाम पर तथा अन्य किसी गान–वैशिष्ट्य के आधार पर नाम ग्रहण किए। दस सृजन –काल में वैदिक साम का स्वरूप सरल था। देवताओं की स्तुति में उनके प्रति अपनी स्वाभाविक हार्दिक भक्ति की अभिव्यक्ति के

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

लिए उसको उपयोग किया था।

वैदिक काल में शास्त्रीय संगीत का विकास वांशिक पृष्ठभूमि में अधिक हुआ। यज्ञ एक श्रेष्ठ कर्म हैं, यह युग की मान्यता थी किंतु वह श्रेष्ठ कर्म भी अपनी पूर्णता के लिए साम की अपेक्षा रखता था। साम–रहित यज्ञ, यज्ञ ही नही माना जाता था। याज्ञिक पृष्ठभूमि में वैदिक साम के विकास के कारण उसके स्वरूप में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। इस काल में साम की कई तकनीको का विकास हुंआ और उसकी गान–प्रक्रिया में भी कुछ परिवर्तन हुआ। वैदिक साम के निर्माण–काल में जहॉ एक सामगऋषि स्वयं साम का गान करता था, वहाँ याज्ञिक संस्था के विकास–काल में उस साम का गान करने के लिए कई व्यक्तियों की सहायता अपेक्षित मानी जाने लगी। इस प्रकार यज्ञों में सामगान के लिए एक उद्गातृवर्ग का आविर्भाव हुआ, जिसके अंतर्गत 'उद्गाता', 'प्रस्तोता', प्रतिहर्ता, और सुब्रह्मण्य नामक चार सदस्य होते थे। एक साम पाँच या सात भागों में विभक्त करके गाया जाने लगा, जिसको साम की 'भक्ति' की संज्ञा दी गई। ये भक्तियॉ हैं।– प्रस्ताव, उद्गीय, प्रतिहार, उपद्रव और निधन। प्रस्तोता; ननामक ऋत्विज् 'प्रस्ताव' नामक भक्ति का, उद्गाता उद्गीता और उपद्रव का, प्रतिहर्ता प्रतिहार का तथा अंत में तीनों ऋत्विज् मिलकर निधन भक्ति का गान करते थे। यज्ञों में गान की इस तकनीक का पूर्ण रूप से पालन करना पड़ता था, क्योंकि त्रुटि होने पर यज्ञ के नष्ट होने का भय था, जिसके लिए प्रायश्चित भी करना पड़ता था। यागों में भिन्न–भिन्न ऋत्विजों के द्वारा भी गान का विधान था। दस प्रकार दस काल में मुल वेथ्दक साम ने जो स्वरूप ग्रहण किया, वह प्रारंभिक साम से काफी भिन्न था। उद्गातृवर्ग के सदस्य वैदिक सामों को सीखकर गाने वाले थे। ये यज्ञों में सामगान करने वाले गायक मंत्रद्रष्टा ऋषि की श्रेणी में नहीं आते। ये ऋतिवज् वे व्यक्ति थे, जिनको प्रषिक्षण देकर यज्ञ में सामगान के लिए तैयार किया जाता था। प्रारंभिक काल मे, हो सकता है, मूल सामग ऋषि अवसर आने पर कभी–कभी यज्ञों में स्वयं साम का गान भी करते रहे हों, किंतु ब्राह्मण–काल और श्रौतकाल में जो उद्गातृवर्ग के सदस्य होते थे, वे निश्चित ही प्रशिक्षण प्राप्त कर पूर्व सामग ऋषियों के सामों का गान करने वाले थे। वैदिक सामों के इतिहास में यह युग पूर्व–सामों का प्रयोग–काल था। यास्क ने इस युग के सामगों का उपदेश द्वारा साम ग्रहण करने का सकेंत किया है। उस समय उदगातृवर्ग के ऋत्विजों को साम का उपदेश या प्रशिक्षण कैसे दिया जाता था, इस दिशा में जब हम दृष्टिपात करते है तो मालूम होता है कि उस समय साम' प्रशिक्षण के तीन रूप प्रचलित रहे होगें। प्रथम तथा प्रमुख रूप था–पिता द्वारा पुत्र को सामगान का प्रशिक्षण। प्राचीन काल से ही पिता द्वारा पुत्र को मंत्रों का उपदेश देने की परंपरा प्रचलित थी। इसी लिए तो वेद 'श्रति' कहलाते थे। सामग पिता द्वारा पुत्र को साम का उपदेश स्वाभाविक था। पुत्र भी पिता से प्राप्त सामों का संरक्षण अपना परम कर्तव्य समझता था। इसी परंपरा में प्रचलित थी, क्योंकि उस समय व्यक्ति का व्यवसाय बहुत कुछ वंश–परंपरागत भी होता जा रहा था। वैदिक साहितय में इस प्रकार पिता द्वारा पुत्रों को दिये जाने वाले साम के व्यावहारिक प्रशिक्षण का उल्लेख मिलता है। यह स्वाभाविक था कि पिता द्वारा गाए जाने वाले साम का पुत्र नित्य अभ्यास भी करता हो, ताकि वह स्वयं भी उद्गातृवर्ग का कार्य करने

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

में सक्षम हो सके।

साम–प्रशिक्षण का दूसरा रूप गुरू शिष्य– पंरपरागत था। ऐसा प्रतीत होता है कि जो व्यक्ति यज्ञों में सामगान में निपुण होता था, उसकी ख्याति दूर–दूर तक फैली जाती थी। उद्‌गातृवर्ग का कायै करने के इच्छुक विद्यार्थी दूर–दूर से भी उस आचार्य के पास पहुँचते थे और उसके साथ यज्ञों में भाग लेते थे तथा व्यावाहारिक रूप से साम का प्रशिक्षण लेते थे । वैदिकग्रंथों में इस प्रकार के आचार्यों के अपने शिष्यों–सहित यज्ञों में भाग लेने का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। साम–प्रशिक्षण का तीसरा रूप गुरूकुल में जाकर गुरू से सामों का अध्ययन करना था। प्राचीन काल में विद्याध्ययन की गुरूकुल–प्रणाली प्रचलित थी। दूर–दूर से विद्यार्थी अध्ययन करने के लिए गुरूकुल में आते थे। गुरूमुख से सुनकर अध्ययन किए जाने के कारण वेद को 'अनुश्रव' भी कहा गया। प्राचीन काल में यद्यपि संपूर्ण वेदों के प्रति सबकी आस्था होती थी, तथापि विशेष वेदाध्ययन की भी परंपरा थी। जिस प्रकार ऋग्वेदशाखी 'ऋग्वेद' का, यजुर्वैशाखी 'यजुर्वेद' का तथा अथर्ववेदशाखी 'अथर्ववेद का विशेष अध्ययन करते थे, उसी प्रकार सामवेद 'की जो अनके शाखाएँ मिलती है, उनसे ज्ञात होता है कि सामगान का अध्ययन विशेष रूप से किया जाता था। गुरूकुल में साम–प्रशिक्षण की प्रक्रिया क्या थी, इस पर जब हम विचार करते है तो मालूम होता हे कि शिष्यों को पहले सामयोनि ऋचाओ का या आर्चिक संहिता का ज्ञान कराया जाता था और तदनंतर उन ऋचाओं पर ततत्–शाखी आचार्यो के द्वारा पंरमरागत सामों का अध्यापन किया जाता। उदाहरणार्थ, यदि आचार्य कुथुम शाखा की परंपरा का था तो उसके पास कुमिशाखी शिष्य ही आते थे और उनको कौथुमशाखीय सामों का अध्ययापन किया जाता था। यदि जैमिनिशाखी शिष्य ही आते थे और उनसे अपनी शाखा की आर्चिक–संहिता था गान–संहिता का अध्ययन करते थे। इन आश्रमों में जो साम प्रक्षिशण दिया जाता था, वह मौखिक पंरपरा में था। आचार्य पहले शिश्यों के सामने स्वयं साम का गान करता था, तदंनतर शिष्य इसी का अनुकरण करते थे उपदेश के समय लय को विलंवित रखा जाता था। यह कार्य तब तक चलता था, जबतक वह साम पूर्ण रूप से कंठस्थ न हो जाए। एक साम के पूर्ण हो जाने के बाद ही दूसरा साम सिखाया जाता था। इस प्रकार अपनी शाखा के संपूर्ण सामों का ज्ञान शिष्य को कराया जाता था। गुरू से अधीत साम कहीं विस्मृत न हो जाए, इसलिए शिष्य प्रतिदिन एसका अभ्यास करते थे, जिसको 'स्वाध्याय' कहा जाता था। यह स्वाध्याय नित्यकर्म माना जाता था। गुरूकुल से निकलने के बाद गृहस्थ–आश्रम में रहता हुआ भी वह शिष्य यथाशक्ति अपनी शाखा के सामों का अध्ययन जारी रखता था। ऐसे व्यक्तियों का ही यज्ञों में उद्‌गातृवर्ग के विभिन्न सदस्यों के रूप में वरण किया जाता था।

याज्ञिक संदर्भ मे सामगान बहुत–कुछ तकनीकी हो चुका था तथा किन्ही विशिष्ट सिद्धांतों के आधार पर उनके विविध नाम तथा लक्षण भी निर्धारित हो चुके थे। इसलिए उस काल मे संगीत का जो सिद्धांत–पक्ष था, उसके भी अध्ययन तथा प्रशिक्षण के लिए कई संस्थाएँ कार्य कर रही थी। वेदांग सहित्य के अनुशीलन से यह मालूम होता है कि उस काल में अन्य वेदों की भाँति 'सामवेद' की टेक्नीक तथा उसके सिद्धांतों का अध्ययन करने के लिए कई

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

साम–परिषदों की स्थापना हो चुकी थी। इन परिषदों में विभिन्न शाखागत साम के स्वर–वैशिष्ट्य तथा उच्चारण–वैशिष्ट्य का विशेष रूप में अध्ययन होता था। इन परिषदों में जिन ग्रथों का प्रणयन हुआ, वे पार्षद या प्रतिशाख्य कहलाए। इन प्रतिशाख्यों में सामों की अध्यापन–क्रिया का भी उल्लेख मिलता है। वस्तुतः ये साम–परिषदें तत्कालीन साम की प्रगत अध्ययन–संस्थान थीं, जिनमें साम–विषयक उच्च अध्ययन के लिए जिज्ञासू विद्यार्थी आते थे। इनमें अध्यापन कराने वाले के आचार्य थे, जो सामगान के सिद्धांत–पक्ष के पूर्ण रूप से ज्ञाता थे। इन आचार्यों के साम–विषयक मत 'सामवेद' के प्रातिशाख्य ग्रथों में मिलते हैं। 'जैमिनिगृह्यसूत्र' के तर्पण–प्रकरण के तेरह आचार्यों का–जैमिनि, तलवकार, सात्यमुग्र, राणायनि, दर्वास, भागुरि, गौरूंडि, गौर्गुल्वि, भगवंतममौपमन्यव, कराडि, सावर्णि, गार्ग्यवार्षगण्य तथा दैवंत्य–उल्लेख मिलता है, जो सामगान–कला में निपुण थे और इस सामगान–परम्परा को आगे बढ़ाने वाले थे। 'गोभिलगृह्यकर्म–प्रकाशिका' में– राणायनि, सात्यमुग्रि, व्यास (दुर्वासा), भागुरिः, और्गूडि, गौल्गुलविः (गौरग्रीवि–गणपाठ, 4–3–131), भानुमानौपमन्यवाः, सुकराटिः, मशकोगार्ग्यः, वार्षगण्यः, कौथुमिः शालिहोत्रीः, जैमिनि–तेरह सामग आचार्यों का उल्लेख किया गया है। इसके साथही दस प्रवचनकारों–शटिः, भाल्लविः, काल्वविः, ताण्ड्यः, वृषाणः, शमबाहु, रूरूकिः, अगस्त्य, बष्कशिरा, हूहूः– का भी उल्लेख मिलता है। रूद्रकंद 'खादिर–गृह्यसूत्र, 3–2–14 की टीका में इन्हीं तेरह आचार्यों और दस प्रवचनकारों का उल्लेख करता है।

इस प्रकार हम देखते है कि वैदिक काल में साम नामक शास्त्रीय संगीत के कलात्मक तथा शास्त्रात्मक, दोनों पक्षों का प्रशिक्षण होता था उस प्रशिक्षण का ही परिणाम है कि आज भी वे साम हमें उपलब्ध है। किन्तु दुःख की बात है कि आज संगीत–विद्यालयों के साम–प्रशिक्षण बिल्कुल लुप्त हो गया है। इस लिए आवश्यकता इस बात की है कि जहाँ संगीत–विद्यालयों में आधुनिक शास्त्रीय संगीत का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। उसके साथ–साथ वैदिक साम–प्रशिक्षण का भी कार्य किया जाए, जिससे भारतीय संगीत की मूल स्त्रोत इस प्राचीन पद्धति एवं परंपरा की रक्षा हो सके।

संदर्भ ग्रंथ

1) साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः 1 निरुक्त, 1–20
2) अयज्ञो वा एष योऽसामा। तैत्तिरीयसंहिता, 2–5–8
3) शिष्याणामुपदेशार्थे कुर्याद् वृति विलंबिताम। नारदीय शिक्षा, 1–2–21
4) जैमिनिगृह्यसूत्र, तर्पण–प्रकरण, 1–18

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.